शिक्षा और भारत की वर्गीय संरचना

अमन मदान

हमारे विचार व आकांक्षाएं किसी वर्गीय संरचना के भीतर हमारी स्थिति से प्रभावित रहते हैं। मेरा कॉलेज जाने का सपना देख पाना और अपने लिए कोई खास कैरियर बना पाना मेरे परिवार के पास उपलब्ध संसाधनों पर निर्भर कर सकता है। बड़ा होकर जब मैं कोई नौकरी करने लगूंगा और उससे कुछ सत्ता हासिल होगी उसका इस बात पर प्रभाव पड़ेगा कि मैं अपनी शिक्षा हासिल करने के दिनों की मुश्किलों को सफल मानता हूं या नहीं। इससे दूसरों को यह संकेत भी मिलेगा कि क्या मेरा काम वांछनीय है। बाजार में किन्हीं खास तरह की नौकरियों की उपलब्धता व उनके लिए मिलने वाली तनख्वाह का प्रभाव इस बात पर पड़ेगा कि बेहतरीन छात्र उन्हें पाने की आकांक्षा पालेंगे या नहीं। वर्गीय ढांचा आमतौर पर दिखाई देने वाले इस दृश्य के लिए जिम्मेदार है जिसमें मजदूर का बच्चा जल्दी ही शिक्षा छोड़ देता है और जो काम उसे लगता है कि आसानी से उपलब्ध है उसकी खोज करने लगता है और इसे तब तक नहीं रोका जा सकता जब तक कि लगभग मुफ्त में उसे अच्छे स्कूल उपलब्ध ना हों। वर्गीय सत्ता की आवाज की गूंज इस तथ्य में सुनाई देती है कि जब तक सरकार या परोपकारी संस्थान अच्छे स्कूल उपलब्ध नहीं करवाते तब तक इस तरह की बच्ची खुद अपने स्तर पर उन तक नहीं पहुंच सकती। वर्गीय संरचना हमारे ऊपर अदृश्य किन्तु बेहद जबरदस्त दबाव डालती है मगर इसका मुकाबला सरकार, सामाजिक आन्दोलनों व कुछ अन्य लोगों की मदद के जरिए ही किया जा सकता है।

सेवा व औद्योगिक क्षेत्र की वर्गीय संरचना तथा शिक्षा के साथ उनके संबंधों का विश्लेषण करने के विभिन्न तरीके हैं। इनमें सबसे विश्वसनीय तरीका 20वीं सदी के अंत में एरिक ओलिन राइट (1996, 2005) द्वारा विकसित किया गया तरीका है। वे उन तीन पहलुओं को साथ लेते हैं जिनका जिक्र पहले किया जा चुका है। ये तीन पहलू हैं शोषण व सत्ता का रिश्ता तथा उपलब्ध बाजार में डिग्रियों की साख। लेख के अगले हिस्से में भारत में शिक्षा पर वर्गीय प्रभाव के बारे में चर्चा करने के लिए हम राइट के विचारों की मदद लेते हैं और यह काम हम वर्ग से संबंधित तीनों पहलुओं के जरिए करते हैं।

एरिक ओलिन राइट

एरिक ओलिन राइट वर्गीय संरचना व इसके भीतर लोगों की स्थिति का विश्लेषण करने के लिए मार्क्स व वेबर के सैद्धांतिक विचारों को मिलाकर देखते हैं। किसी खास वर्ग के लोग किस प्रकार के रिश्तों में होते हैं उन्होंने इसका अध्ययन किया था। उन्होंने पाया कि लोगों को वर्ग के किसी खास खाने में डालने की कोशिश का कोई खास फायदा नहीं था इसके बजाए यह देखा जाना चाहिए था कि वे किन रिश्तों के हिस्से थे और वे उनकी जिन्दगियों व विकल्पों को कैसे प्रभावित कर रहे थे। उन रिश्तों को समझने के मुख्य तरीकों में यह देखना शामिल था कि लोग उत्पादन के साधनों के साथ किस तरह जुड़े थे (मार्क्स के सिद्धांत

से), बाजार में उनकी स्थिति क्या थी और संस्थान के अंदर उनके पास कितनी सत्ता थी (वेबर के सिद्धांतों से)। उन्होंने इस ओर ध्यान दिलाया कि इनके असंख्य संयोजन बनना संभव थे और किसी व्यक्ति के वर्ग का ठीक-ठीक पता लगाने की कोशिश करना एक व्यर्थ की कवायद थी। वर्ग उतने अलग-अलग रूप में अस्तित्व में नहीं होते थे जितने कि वे चेतना संपन्न समूह होते थे जो खुद को कोई नाम दे देते थे। उदाहरण के लिए, भारत में एक तिहाई आबादी संभवतः अपने आपको मध्यम-वर्ग मानती है। किन्तु अगर कोई उन सिद्धांतों को लागू करके देखे जिनके बारे में राइट बात कर रहे हैं तो एक ऐसी जटिल वर्गीय संरचना उभर कर सामने आ जाती है जिसे शायद उसमें शामिल व्यक्ति भी परिभाषित न कर पाएं। इसका अर्थ यह हुआ कि वर्ग व शिक्षा को समझने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को किसी खास और स्थिर खाने में डालने की कोशिश करने के बजाए लोगों की स्थिति को अवधारणाओं के ग्रिड के भीतर मौजूद मानकर बात करना ज्यादा लाभदायक था।

शिक्षा तथा उत्पादक, व्यापार या सेवा प्रदाता वर्ग

मार्क्स की तरह एरिक ओलिन राइट ने विभिन्न प्रकार की पूंजी रखने वालों व श्रम के साथ शोषण का रिश्ता रखने वालों के बीच में फर्क किया था। एक वर्ग जो तुरंत स्पष्ट तौर पर सामने आया वह ऐसे पूंजीपतियों का है जो पारिश्रमिक के बदले श्रम लेते हैं और उनका लाभ इस बात पर निर्भर करता है कि वे मजदूरों व उत्पादन प्रक्रिया को कितना अतिरिक्त निचोड़ सकते हैं। पिछली शताब्दी के दौरान पूंजीपति खुद बड़े से बड़े होते चले गए हैं अतः विभिन्न प्रकार के पूंजीपतियों को अलग-अलग कर लेना मददगार हो सकता है। एक तरफ अंबानी और बिड़ला जैसे बड़े पूंजीपति हैं, उनके पास दसियों हजार कार्मिक हैं और उनमें मैनेजरों के ढेर सारे स्तर हैं। उनकी राजनीतिज्ञों व प्रशासन के साथ सीधे हॉट लाइन पर बात होती है। वे अपने बच्चों को भारत के सबसे मंहगे स्कूलों में शिक्षित होने के लिए भेजते हैं और उसके बाद विदेश भेज देते हैं जहां उन्हें उनके पैसे के बल पर एलीट मैनेजमेंट या दूसरे कॉलेजों में एडमिशन मिल जाता है। उनका जीवन व काम की शैली मध्यम दर्जे के उन पूंजीपतियों से काफी अलग है जिनके पास गिनती के या दर्जनभर कार्मिक हुआ करते किन्तु फिर भी वे उनके साथ शोषण के एक रिश्ते में होते थे। इनका आय का स्तर काफी कम होता और जीवन जीने का ढंग बड़े पूंजीपतियों से काफी अलग होता। किन्तु फिर भी वर्चस्व व शोषण का रिश्ता मौजूद रहता। इनके बरक्स उन छोटे पूंजीपतियों को रखा जा सकता है जिनके पास बमुश्किल इक्का-दुक्का काम करने वाले होते हैं और जो बड़े व मध्यम दर्जे के पूंजीपतियों की तुलना में काफी असुरक्षित होते हैं। उनका जीवन काफी तनाव भरा हो सकता है, उन्हें लगातार आजीविका अर्जित करने व जीवन स्तर को बनाए रखने की चिंता लगी रह सकती है। ये लोग छोटे रेस्टोरेंट या छोटी फैक्ट्री के मालिक हो सकते हैं। इनमें से हरेक के बच्चे जिस प्रकार की शिक्षा हासिल करेंगे वह काफी अलग होगी। इन तीनों में से छोटे पूंजीपति के स्तर के आसपास वाला व्यक्ति शायद ऐसा होता होगा जो अपने बच्चों पर स्कूल में मेहनत करने का दबाव बनाता होगा क्योंकि उनका दैनिक जीवन काफी असुरक्षित व तनाव भरा होता था। भारत के ज्यादातर उद्यमियों को छोटे पूंजीपति की अवधारणा के नजदीक रखा जा सकता है, जो छोटे अनौपचारिक सेक्टर में बिना ज्यादा सुरक्षा के काम कर रहे होते हैं या सुरक्षा संबंधी कायदे कानूनों व मजदूरों के कल्याण की परवाह किए बिना काम कर रहे होते हैं। इस पर गौर किया जाना चाहिए कि यह कोई स्थिर या जड़ किस्म की वर्गीय स्थितियां नहीं थीं बल्कि अलग-अलग लोगों में मौजूद वे प्रवृत्तियां थीं जो कि एक अवधारणा के नजदीक या दूर होने के रूप में देखी जा सकती थीं। जो लोग मध्यम या बड़े पूंजीपतियों की धारणा के नजदीक होते थे वे दूसरों की बजाए शिक्षा से काफी अलग उम्मीद रखते थे। वे अपने बच्चों पर स्कूली शिक्षा को भविष्य को सुरक्षित करने वाली एक मात्र जीवनरेखा मानने का बहुत दबाव नहीं बनाते हैं।

अकेले व स्वतंत्र काम करने वाले व्यक्ति को पूंजीपतियों से अलग किया जा सकता है और उसे ऐसे व्यक्ति के तौर परिभाषित किया जा सकता है जिससे ना तो कोई और पारिश्रमिक के बदले श्रम करवा रहा होता था और ना ही वह स्वयं किसी को पारिश्रमिक देकर अपने लिए काम पर रखता था। इस तरह यह एक ऐसा व्यक्ति होता जो न तो किसी और का शोषण कर रहा होता न ही कोई और उसका शोषण कर रहा होता। स्वतंत्र काम करने वाला

व्यक्ति अक्सर अपने परिवार के सदस्यों के श्रम का उपयोग कर रहा होता किन्तु दूसरों से नियमित तौर पर पारिश्रमिक देकर काम नहीं करवाता। हालांकि इसमें अलग-अलग तरह के लोगों का एक बड़ा दायरा शामिल होता जिसमें अपनी शैक्षिक उपलब्धियों के बल पर अपना जीवन यापन करने वालों (डॉक्टर, आर्कीटैक्ट्स आदि) से लेकर वे लोग (टोकरी बनाने वाले, सब्जी का ठेला लगाने वाले आदि) तक शामिल होते जिनके लिए शिक्षा बहुत मायने नहीं रखती थी। उनकी वर्गीय हैसियत व शिक्षा को लेकर उनकी हसरतों को बाजार की उन परिस्थितियों से बखूबी समझा जा सकता था जिनमें वे रह रहे होते व काम कर रहे होते थे। उदाहरण के लिए, जिन माता-पिताओं के पास ऐसी डिग्रियां होती हैं कि जिनकी वजह से वे लोकप्रिय पेशों में आ जाते हैं वे अपने परिवार में शिक्षा और उससे मिलने वाले फायदों को लेकर जबरदस्त दबाव बनाते हैं। जबकि जिन लोगों की डिग्री की बाजार में कीमत कम होती है या जिनके पास किसी तरह की कोई डिग्री नहीं होती वे शिक्षा हासिल करने के लिए जरूरी प्रयासों को लेकर बहुत हद तक संशय में रहते हैं।

मजदूर वह व्यक्ति होता है जो मजदूरी लेकर दूसरों के लिए काम करता है। यह महत्पूर्ण वर्ग था और पिछली दो शताब्दियों के दौरान लगातार बढ़ रहा था। बड़ी संख्या में लोग छोटे पूंजीपति या स्वतंत्र रूप से काम करने वाले बनने की बजाए किसी और के लिए काम करने वाले बनना शुरू कर चुके थे। विकास के वर्तमान मॉडल की वजह से अभी हाल के वर्षों में पारिश्रमिक के बदले काम करने वालों की तुलना में स्वतंत्र रूप से काम करने वाले लोगों की संख्या तेजी से बढ़ी है क्योंकि नियमित काम बहुत दुर्लभ होता जा रहा है। किन्तु अभी भी यह काफी महत्वपूर्ण है और इसका आकार काफी बड़ा है। राइट ने इस ओर ध्यान दिलाया कि पारिश्रमिक पर काम करने वाले मजदूरों को भी विभिन्न स्तरों व प्रकारों में बांटा जा सकता है। उनके बीच कुछ इस तरह का भेद किया जा सकता है- एक वे जो कम कुशल थे और दूसरे वे जो विशेषज्ञ या बहुत कुशल थे और जिनकी बाजार को जरूरत होती थी। उनकी आय में भिन्नता होती है और उनके बच्चों का भविष्य भी अलग-अलग होता था। एक छोर पर वे लोग होते हैं जो फावड़े या गैंती से नालियों की खुदाई करके पैसा कमाते हैं और दूसरे छोर पर वे लोग होते हैं जो जमीन में खुदाई करने वाली महंगी व जटिल मशीनरी चलाने की कुशलता रखते हैं। इसके अलावा मजदूरों के बीच इस आधार पर भी फर्क है कि किसके पास कितनी सत्ता है। कुछ सामान्य मजदूर हो सकते हैं तो कुछ वे हो सकते हैं जिनको उनका सुपरवाइज़र बना दिया गया था और उनके भी ऊपर उनके मैनेजर हो सकते हैं। मैनेजरों में भी कुछ ऐसे हो सकते थे जिन्होंने अपने तरीके से अपना काम किया और जिनके पास विशेषज्ञता संबंधी किसी प्रकार की कोई डिग्री नहीं होती थी तो दूसरी तरफ ऐसे मैनेजर भी हो सकते थे जो विशेषज्ञ होने का दावा करते थे और जिनके पास एडवांस डिग्री व अनुभव थे।

इस तरह पूंजी, सत्ता, विशेषज्ञता व बाजार की मांग संबंधी सिद्धांत विभिन्न लोगों के बहुरंगी वर्गीय अनुभवों को समझने में हमारी मदद करते हैं। इनका शिक्षा के साथ बहुत नजदीकी रिश्ता है। बहुत से देशों व जगहों की शिक्षा पर उच्च शिक्षित मजदूरों व स्वतंत्र रूप से काम करने वाले शिक्षित लोगों का नियंत्रण रहा है। इनमें मैनेजर व प्रोफेशनल लोग शामिल हैं। ये वे लोग हैं जो यह तय करते हैं कि पाठ्यचर्या या शिक्षाक्रम में क्या होगा और पाठ्यपुस्तकों की विषयवस्तु इन्हीं की वर्गीय परिस्थितियों की प्रवृत्ति से प्रभावित हुआ करती है। इन्हीं के बच्चों के पास सबसे अच्छे स्कूलों व कॉलेजों में जाने के मौके सबसे ज्यादा हुआ करते थे। बहुत से अध्येता यह तर्क देते हैं कि शिक्षा की विषयवस्तु व उद्देश्यों को उन वर्गों के हितों व विचारों द्वारा विकृत कर दिया गया जिन वर्गों का उन भूभागों पर नियंत्रण हुआ करता है।

आजकल बाजार के हिसाब से कम कीमती शिक्षा हासिल करने वाले या बिल्कुल भी शिक्षा हासिल नहीं करने वाले ज्यादातर लोग निम्न स्तर के स्वतंत्र काम करने वाले लोग होते हैं या अकुशल व ऐसे मजदूर होते हैं जिनके पास सत्ता कम है। भारतीय आबादी में एक बहुत बड़ा हिस्सा आज इन लोगों का है, शायद 75 से 80 प्रतिशत तक। यह स्थिति भारतीय शिक्षा पर इस तरह के बहुत ही गंभीर सवाल खड़े करती है कि अंग्रजों के भारत छोड़कर चले जाने के लगभग सत्तर साल बाद भी हमारी शिक्षा व्यवस्था बहुत से लोगों की वर्गीय स्थिति में कोई खास फर्क क्यो नहीं ला पाई।

इस शिक्षा व्यवस्था की आखिरकार दिक्कत क्या है? कम प्रभावशाली वर्ग शायद इस पर अपनी जरूरतें पूरी करने व दूसरे लोगों के बरक्स अपनी स्थिति को बराबरी पर लाने का दबाव नहीं बना पाते हैं। भारतीय शिक्षा व्यवस्था उन लोगों के लिए ज्यादा बेहतर काम करती हुई लगती है जो पहले से शिक्षित हैं और जिनके पास अपने बच्चों को सबसे अच्छे स्कूलों में भेजने के संसाधन हैं। व्हाइट कॉलर शिक्षितों व वर्गीय संरचना में मौजूद मध्यम वर्ग की पकड़ शिक्षा व्यवस्था पर सबसे मजबूत दिखाई देती है। हालांकि उनके लिए भी शिक्षा बेहद असुरक्षा व व्याकुलता पैदा करने वाली व्यवस्था है। वे लगातार इस बात से चिंतित रहते हैं कि उनके बच्चे समाज की इस स्तरीकृत व्यवस्था में उन्नति करेंगे या पिछड़ जाएंगे।

तालिका 1 भारतीय वर्ग संरचना के आयाम या पहलू

परिवारों के मुख्य व्यवसाय	प्रतिशत
मालिक, मैनेजर, चुने गए प्रतिनिधि, पेशेवर लोग, प्रोफेसर	23.7
निचले पायदान पर मौजूद शिक्षित मजदूर, शिक्षक, क्लर्क, नर्स, तकनीकी सहायक, ज्योतिषि	6.2
अकुशल मजदूर : दुकान पर सहायक, हाउसकीपिंग में लगे लोग, रेस्टोरेंटों में काम करने वाले, सुरक्षा सेवाएं, गलियों में सामान बेचने वाले, घरेलू नौकर, मैनेजर, कुली	9.8
ऐसे किसान जिनके पास 2 एकड़ से कम जमीन है	15.7
ऐसे किसान जिनके पास 2 से 4 एकड़ तक जमीन है	5.3
ऐसे किसान जिनके पास 4 एकड़ से ज्यादा जमीन है	4.0
पशु पालन व खेती	0.8
वन विभाग में काम करने वाले मजदूर, मछुआरे, शिकारी और खेतीहर मजदूर	19.6
कुशल मजदूर, दस्तकार, मशीनरी चलाने वाले मजदूर, विभिन्न साधनों के ड्राइवर	14.8
कुल	**100.0**

शिक्षा व खेतीहर वर्ग

वर्गीय रिश्तों व उनके शिक्षा पर पड़ने वाले प्रभाव का विश्लेषण करने का जो उपरोक्त तरीका है उसकी दलील यह है कि शिक्षा वर्गीय असमानता की व्यवस्था के साथ बहुत गहराई से जुड़ी है। इस तरह के विश्लेषण का विस्तार ग्रामीण भारत के बहुत से इलाकों तक किया जा सकता है। आजकल बहुत से लोगों को गावों में रहते हुए हर रोज निकट के कस्बे जाना पड़ रहा हो सकता है। ऐसे कई परिवार हो सकते हैं जिनमें एक भाई पारिवारिक खेती संभाल रहा हो और बाकी भाइयों को गैर खेतीहर पेशों में काम करना पड़ रहा हो। एरिक ओलिन राइट की यह रूपरेखा विभिन्न वर्गों के बीच उभरे उन नए वर्गों के बीच के फर्क को समझने में काफी मददगार साबित होती है जहां सर्विस सेक्टर सक्रिय है। हालांकि ज्यादातर ग्रामीण भारत के लिए मुख्य रूप से मार्क्स की परंपरा से लिया गया सादा वर्गीय विश्लेषण भी पर्याप्त होता है।

उदाहरण के लिए, एस. एम. दांडेकर (2001) भारतीय खेतीहर वर्गों के बीच के मौजूद फर्क को जिस तरह पहचानते हैं उसे यहां लेते हैं। यह देखा जा सकता है कि बड़े किसानों के जीवनानुभव व शिक्षा संबंधी चुनाव मंझोले व छोटे किसानों की अपेक्षा अलग होते हैं। बड़े किसान उन्हें कहा जा सकता है जिनके पास इतनी पर्याप्त जमीन होती है

कि वे दूसरे मजदूरों को नियमित रूप से काम करने के लिए अपने यहां रख सकते हैं। यह ऐसा व्यक्ति होगा जिसकी अपने इलाके में अच्छी धाक होती है। अगर यह व्यक्ति अपनी जैसी वर्गीय पृष्ठभूमि के ही अन्य सगे-संबंधियों के साथ उस इलाके में रह रहा होता है तो इन सभी परिवारों का समूह राजनैतिक प्रभाव के साथ-साथ उस इलाके में दबंगई हासिल कर लेता है। जमीन का बड़ा हिस्सा उनके पास होता है और अपने यहां काम करने वाले कार्मिकों से बेगार करवाने/काम निकलवाने के लिए जरूरी सामाजिक दबंगई की संस्कृति भी यह हासिल कर लेते हैं। उनके बच्चे स्कूल, कॉलेज जा रहे हो सकते हैं किन्तु उसके बावजूद अक्सर अपने परिवार की तरफ से पढ़ाई में अच्छा करने का किसी प्रकार का दबाव अनुभव नहीं करते, खासकर बहुत बड़े किसानों के बीच ऐसा होता है। हो सकता है कि उनके बच्चे गांव या पास के कस्बे के स्कूल में भी नहीं पढ़ रहे हों, बल्कि वे अक्सर बड़े शहर में रहने और पढ़ने चले जाते हैं।

ऐसे किसान जिनके पास परिवारिवारिक श्रम के आधार पर संभाली जा सकने लायक जमीन होती है उन्हें मंझोले किसान कहा जा सकता है। बड़े किसानों की तरह इन मंझोले किसानों को नियमित तौर पर मजदूरी पर बुलाए जाने वाले मजदूरों की जरूरत नहीं होती है और न ही इन्हें किसी दूसरे के लिए काम करने की जरूरत होती है। ऐसे किसान अपने परिवार के सदस्यों की मदद से अपने सारे काम करने में समर्थ होते हैं या फिर फसल कटाई जैसे कुछ अवसरों पर मजदूर बुलाकर अपना काम करने में समर्थ होते हैं। अक्सर यही वह वर्ग होता है जो अपने बच्चों पर पढ़ाई का दबाव बनाता है और कृषि से होने वाली आय के इन दिनों कम होते चले जाने की वजह से अपने बच्चों से कोई और पेशा अपनाने के लिए कहता है। ये लोग अपना भाग्य सुरक्षित करने के लिए खेती से अलग जाकर किसी और पेशे में अपने बच्चों को भेजने का दर्द उठा सकते हैं। उनके पास अपने बच्चों को प्राइवेट स्कूलों में भेजने के लिए पैसा होता है किन्तु बड़े किसानों के विपरीत इनमें से ज्यादातर अपने बच्चों को आसपास ही भेजते हैं।

इन मंझोले और बड़े किसानों के बरक्स ऐसे किसान भी हो सकते हैं जिनके पास कुछ जमीन होती है किन्तु केवल खेती से अपने परिवार का खर्च निकालने के लिए यह पर्याप्त नहीं होती। ये छोटे किसान अपनी आय बढ़ाने के लिए अक्सर मंझोले व बड़े किसानों के यहां भी काम करने चले जाते हैं। आजकल इनमें से बड़ी संख्या में लोग शहर आते-जाते हैं या मौसम के आधार पर वहां पलायन कर जाते हैं। ये ऐसे लोग हैं जो बड़ी शिद्दत से यह महसूस करते हैं कि उनके बच्चों को खेती के अलावा कोई और पेशा चुनना चाहिए क्योंकि और जमीन खरीदना बहुत मुश्किल होता है। ज्यादा शिक्षा हासिल करना आपको क्षितिज के पार बेहतर जीवन का वादा (अक्सर चाहे झूठा ही सही) देता है। ये वे लोग हैं जिन्हें एक ऐसे देश में जहां सरकारी शिक्षा के रूप में मौजूद सस्ती व अच्छी शिक्षा का पौधा सूखता जा रहा है अपनी उम्मीदों को हकीकत में बदलना बेहद मुश्किल नज़र आता है। अच्छी शिक्षा अक्सर ही उनकी पहुंच से दूर रह जाती है।

ऐसे किसान भी हो सकते हैं जो जमीन भाड़े पर लेकर खेती कर रहे हों और जैसे-तैसे अपना जीवन यापन कर रहे हों। ये लोग उन लोगों से जमीन भाड़े पर ले लेते हैं जो या तो अब शहर में काम कर रहे हैं या फिर जिन परिवारों में लोग बहुत कम हैं। अपनी जमीन नहीं होने के चलते उन्हें बड़ी राशि भाड़े के रूप में देनी पड़ती है अथवा अपने उत्पादन में जमीन मालिक को हिस्सा देना पड़ता है। कई बार इन लोगों में वे छोटे किसान भी होते हैं जो कुछ और जमीन बढ़ाकर अपनी आय बढ़ाना चाहते हैं। हालांकि इसमें लाभ बहुत कम होता है और मेहनत ज्यादा होती है। इस वर्ग के माता-पिता भी अपनी आय के आधार पर अपने बच्चों को अच्छी शिक्षा उपलब्ध करवाने में काफी कठिनाई महसूस करते हैं।

भूमिहीन कृषि मजूदर वे लोग होते हैं जिनके पास किसी तरह की कोई जमीन नहीं होती, न तो अपनी न ही भाड़े की। उन्हें अपना जीवन चलाने के लिए हर रोज किसी और के यहां मजदूरी करनी पड़ती है। वे इस बात को समझते हैं कि कुछ वर्गों के लिए शिक्षा एक ऐसी दुनिया हासिल करने का साधन है जो उनकी मेहनत और परिश्रम भरी

रोजाना की दुनिया से बहुत दूर है। किन्तु सबसे कम संसाधन उपलब्ध होने की वजह से ऐसी शिक्षा हासिल करने में आने वाली कठिनाई उनके लिए निराशा का सबब बन जाती है। उनके बच्चों के कुपोषित होने व भूखे स्कूल आने की संभावना बहुत ज्यादा होती है। वे कुछ रुपयों की मजदूरी या कुछ मुट्ठी अनाज के दोनों की तलाश में झट से ड्रॉप आउट हो सकते हैं। जब उनके माता-पिता हर दिन मजदूरी पर जाते हैं तब वे घर पर रह कर अपने भाई-बहिनों की देखभाल करते हैं और स्कूल में अनियमित रहते हैं।

सामाजिक गतिशीलता

कुछ ऐसे तरीके हैं जिनकी मदद से किसी वर्गीय संरचना के निचले स्तर पर मौजूद लोग ऊपर उठ सकते हैं। किसी व्यक्ति का एक सामाजिक स्तर से दूसरे सामाजिक स्तर में आ जाना सामाजिक गतिशीलता कहलाती है। जब लोग निचले स्तर से ऊपरी स्तर में पहुंचते हैं तो इसे ऊपर की ओर सामाजिक गतिशीलता कहते हैं और जब लोग ऊंचे स्तर से निचले स्तर पर आ जाते हैं तो इसे नीचे की ओर सामाजिक गतिशीलता कहते हैं। उदाहरण के लिए, ऊपर की ओर सामाजिक गतिशीलता तब संभव होती है जब शिक्षा आसानी से उपलब्ध हो जाती है तथा अकुशल मजदूरों के बच्चे शिक्षा हासिल करने लगते हैं और इसके साथ ही व्हाइट कॉलर जॉब मानी जाने वाली नौकरियों की संख्या बढ़ रही होती है। जब ऐसा होता है तो बेहतर तनख्वाह वाली व अधिक सुरिक्षित नौकरियों की ओर व्यापक स्तर पर सामाजिक गतिशीलता होना संभव होता है। नीचे की ओर सामाजिक गतिशीलता भी संभव है। ऐसा मुंबई और कानपुर के बहुत से मिल मजदूरों के साथ 1980 व 1990 के दशकों में हुआ था जब उनके मिल मालिक इन शहरों को छोड़कर ज्यादा मुनाफे वाली जगहों पर चले गए थे। इस कारण वहां के बहुत से मजदूर कम आय वाले और ज्यादा अस्थाई किस्म के काम जैसे सब्जी बेचना या दुकान चलाना, अपना कोई काम करना आदि करने लगे।

शिक्षा का आकर्षण दूसरी अन्य चीजों के साथ इसके सामाजिक गतिशीलता के वादे में मौजूद है। जब लोग स्थानीय स्कूलों से इस तरह की उम्मीद करने लगते हैं जो चाहे ऊंचे वर्ग की ओर जाने की हो या फिर अधिक सामाजिक सम्मान हासिल करने की, तब यह सामाजिक गतिशीलता का स्वप्न शिक्षा के प्रति आकर्षण को तीव्र कर देता है।

सामाजिक गतिशीलता का मापन एक ऐसा जबरदस्त तरीका होता है इस बात को आंकने का कि उस इलाके का विकास का मॉडल और शिक्षा अपने उस वादे को पूरा करने में कितना कामयाब रहे हैं जो वादा शिक्षा शास्त्रियों ने किया था। इसे मापने का एक सरल तरीका पीढ़ियों के बीच होने वाली गतिशीलता है जिसमें यह जानने की कोशिश की जाती है कि विभिन्न वर्गों के कितने लोग अपने माता-पिता के वर्ग से बाहर जाने में समर्थ हुए हैं। यह पाया गया कि पीढ़ियों के बीच की यह गतिशीलता इंग्लैंड व अमेरिका जैसे देशों की बजाए स्वीडन व नार्वे जैसे स्कैंडिनेवियाई देशों में ज्यादा बेहतर रही है (ब्लांडेन 2005)। इस बात का संबंध अध्येताओं ने उन देशों में बेहतर तरीके से विकसित सरकारी स्कूली व्यवस्था के साथ जोड़ा है। इन स्कूलों में उच्च योग्यता वाले शिक्षक होते हैं और कमजोर छात्रों को अतिरिक्त मदद देने पर जोर होता है। इसकी एक वजह व्यापक कल्याणकारी उपाय भी हैं जो गरीबों को आवास, चिकित्सा सुविधा व पोषण उपलब्ध करवाकर उन्हें आगे बढ़ने में मदद करते हैं। इंग्लैंड व अमेरिका दोनों ही देशों में सरकारी स्कूल व कल्याणकारी योजनाओं के लाभ उतने प्रभावशाली नहीं हैं।

भारत में सामाजिक गतिशीलता 1983 व 2013 के बीच बढ़ी है (रेड्डी 2015)। हालांकि हो सकता है कि यह गतिशीलता पेशेगत संरचना में बदलाव की वजह से ज्यादा हुई हो। ऐसा लगता है कि जैसे बच्चों के अपने पिता के पेशे से दूसरे पेशे में चले जाने के पीछे अकेली शिक्षा का जो योगदान होता है उसमें कमी आई है। दूसरे शब्दों में कहें तो खुद शिक्षा व्यवस्था गरीब पृष्ठभूमि के बच्चों को शामिल करने में तथा उन्हें ज्यादा आय वाले ऊंचे वर्ग में ले जाने में उतनी समर्थ नहीं रही है। इसका कारण शायद शिक्षा का बढ़ता निजीकरण तथा स्कूलों व कॉलेजों की बढ़ती हुई लागत है, साथ ही सरकारी स्कूलों में गिरावट तथा सरकारी कॉलेजों का पर्याप्त तेजी से विकास नहीं होना भी है।

वर्ग क्यों

किसी इलाके की वर्गीय संरचना ईश्वर प्रदत्त नहीं होती और न ही तय व स्थिर होती है। यह विभिन्न ऐतिहासिक कालों में बदलती रहती है। किसी खास वर्गीय संरचना के बनने व बदलने के पीछे कुछ वजहें हो सकती हैं। पीछे जिन विभिन्न सिद्धांतों का जिक्र किया गया है वे इसकी अलग-अलग व्याख्या करते हैं। कुछ का कहना हो सकता है कि वर्गों का संबंध समाज में मौजूद तकनीक के स्तर से होता है। कुछ कह सकते हैं कि ये इस बात पर निर्भर करते हैं कि राजनैतिक सत्ता किसके पास है। अगर निचले वर्ग राजनीति को प्रभावित करने में ज्यादा समर्थ हो जाते हैं तो वर्गीय संरचना पूरी तरह से दूसरा रूप ले लेती है। अगर उच्च वर्ग दूसरों की बजाए केवल और केवल अपने विकास में रुचि लें तो इसका परिणाम यह हो सकता है कि ज्यादा से ज्यादा संपत्ति ऊपरी स्तर पर इकट्ठी हो जाएगी। यदि उच्च वर्ग सामाजिक जिम्मेदारी व भागीदारी के विचार से प्रेरित हों तो वर्गों के बीच का भेद कम हो सकता है।

शिक्षा आज की वर्गीय संरचना के केन्द्र में है। इसी के जरिए उच्च वर्ग को ज्यादातर जगहों तक पहुंचना संभव हो पाता है, हालांकि इस पहुंच का मतलब सीधे तौर पर उन उद्यमों का स्वामित्व हासिल करना नहीं होता। इसकी विषयवस्तु पर विभिन्न वर्गों की जरूरतों व संघर्षों का रंग चढ़ा है। यहां यह सुझाया जा रहा है कि आज की शिक्षा को समझना व उसके लिए काम करना इसके रिश्ते को वर्ग व्यवस्था के साथ समझे बिना मुमकिन नहीं है। कुछ लोग इस ओर ध्यान दिला सकते हैं कि शिक्षा का मतलब सिर्फ नौकरी और पैसा नहीं है। इसका लेना-देना संस्कृति, पर्यावरण व हमारे एक-दूसरे के साथ संबंध आदि सभी चीजों से है। यह बात सही है और यह शिक्षा के लिए बहुत महत्वपूर्ण सरोकार है। हालांकि यह सब समाज की वर्गीय संरचना के साथ गुंथे हुए हैं। अच्छे मूल्यों वाली शिक्षा को सम्मानजनक तरीके से जीवनयापन करने का तरीका भी उपलब्ध करवाना चाहिए। यह संभव है या नहीं यह काफी हद तक मेरे माता-पिता के वर्ग पर और मेरे इलाके की वर्गीय संरचना द्वारा उपलब्ध करवाए जा रहे अवसरों पर निर्भर करेगा। वर्गीय संरचना यह भी तय कर सकती है कि कौन तो सुसंस्कृत व प्रबुद्ध बनेगा और कौन श्रमसाध्य जीवन जीएगा।

इस बात पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि वर्ग केवल मात्र तरीका नहीं है जिसके जरिए शिक्षा व समाज में स्तरीकरण होता है। अगले लेख में हम जाति से मुखातिब होंगे और अंत में जाति व वर्ग के रिश्तों के सावाल से। ◆

भाषान्तरः प्रमोद पाठक

संदर्भः

Blanden, J., Gregg, P., & Machin, S. (2005). *Intergenerational mobility in Europe and North America*. London: Centre for Economic Performance, LSE. Retrieved from http://cep.lse.ac.uk/about/news/IntergenerationalMobility.pdf

Dandekar, V. M. (2001). Nature of Class Conflict in the Indian Society. In K. L. Sharma (Ed.), *Social Inequality in India: Profiles of Caste, Class and Social Mobility* (Second, pp. 298–329). Jaipur and New Delhi: Rawat.

Reddy, A. B. (2015). Changes in Intergenerational Occupational Mobility in India: Evidence from National Sample Surveys, 1983–2012. *World Development*, *76*, 329–343.

Wright, E. O. (1996). *Class Counts: Comparative Studies in Class Analysis*. Cambridge University Press.

Wright, E. O. (2005). Foundations of a Neo-Marxist Class Analysis. In E. O. Wright (Ed.), *Approaches to class analysis* (pp. 1–26). Cambridge: Cambridge University Press.

लेखक परिचयः जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली से एमफिल एवं पीएचडी करने के बाद एकलव्य, हौशंगाबाद के साथ लगभग 3 वर्ष तक कार्य किया। इसके उपरान्त आईआईटी, कानपुर में समाजशास्त्र का अध्यापन किया। वर्तमान में अजीम प्रेमजी यूनीवर्सिटी, बैंगलोर में समाजशास्त्र के प्रोफेसर हैं।